

स च प्राह मुनिर्ज्ञानी जैनतत्त्वविदाम्बरः। सुधीः शीघ्रं समादाय जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम् ॥३४॥
 साधय त्वं निजं कार्यं तवायुर्दिवसाष्टकम्। ततश्चिलातपुत्रोसौ श्रुत्वा वाक्यं महामुनेः ॥३५॥
 गृहीत्वा सुतपो जैनं संसाराभोधितारणम्। स्थितः प्रायोपयानाख्य-मरणे धीरमानसः ॥३६॥
 श्रेणिकस्तु महाराजस्तं विलोक्य तथास्थितम्। नत्वा प्रशस्य सद्भक्त्या पश्चात्प्राप्तो निजं पुरम् ॥३७॥
 सुभद्रा व्यन्तरी सा च पूर्ववैरेण पापिनी। सोलिकारूपमादाय स्थित्वा तन्मस्तके तदा ॥३८॥
 चञ्च्वा तल्लोचनद्वंद्वं सन्निष्काश्य प्रकष्टतः। पश्चादष्टदिनेषूच्चैर्विकृत्य मधुमक्षिका ॥३९॥
 चक्रे पीडां सुधीः सोपि निःस्पृहो निजविग्रहे। मृत्वा समाधिना स्वामी प्राप्तः सर्वार्थसिद्धिकाम् ॥४०॥
 स श्रीमान्सुभटाग्रणीर्गुणनिधिर्जित्वोपसर्गं दृढं श्रीमज्जैनपदाब्जचिन्तनपरो देवेन्द्रवृन्दैः स्तुतः।
 संप्राप्तो निजपुण्यसंबलयुतः सर्वार्थसिद्धिं शुभां दद्याच्चारुचिलातपुत्रसुमुनिर्भव्योत्र मे मङ्गलम् ॥४१॥
 इति कथाकोशे महामण्डलेश्वर-श्रीश्रेणिक-सुत-चिलातपुत्रस्याख्यानं समाप्तम्।

७१. श्रीधन्यमुनेराख्यानम्

नमस्कृत्य जिनाधीशं सारधर्मोपदेशकम्। धन्यनाममुनेर्वचि चरित्रं शर्मदायकम् ॥१॥

तुझे अपना हित करना उचित ही है। मुनिराज से अपनी जिन्दगी इतनी थोड़ी सुन उनसे उसी समय तप ले लिया जो संसार-समुद्र से पार करने वाला है। चिलातपुत्र तप लेने के साथ ही प्रायोपगमन संन्यास ले धीरता से आत्मभावना भाने लगा। इधर उसके पकड़ने को पीछे आने वाले श्रेणिक ने वैभारपर्वत पर आकर उसे इस अवस्था में जब देखा तब उसे चिलातपुत्र की इस धीरता पर बड़ा चकित होना पड़ा। श्रेणिक ने तब उसके इस साहस की बड़ी तारीफ की। इसे बाद वह उसे नमस्कार कर राजगृह लौट आया। चिलातपुत्र ने जिस सुभद्रा को मार डाला था, वह मरकर व्यन्तर देवी हुई। उसे जान पड़ा कि मैं चिलातपुत्र द्वारा बड़ी निर्दयता से मारी गई हूँ। मुझे भी तब अपने बैर का बदला लेना ही चाहिए। यह सोचकर वह चील का रूप ले चिलात मुनि के सिर पर आकर बैठ गई उसने मुनि को कष्ट देना शुरू किया। पहले उसने चोंच से उनकी दोनों आँखें निकाल लीं और बाद मधुमक्खी बनकर वह उन्हें काटने लगी। आठ दिन तक उन्हें उसने बेहद कष्ट पहुँचाया। चिलातमुनि ने विचलित न हो इस कष्ट को बड़े शान्ति से सहा। अन्त में समाधि से मरकर उसने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की ॥२६-४०॥

जिस वीरों के वीर और गुणों की खान चिलात मुनि ने ऐसा दुःसह उपसर्ग सहकर भी अपना धैर्य नहीं छोड़ा और जिनेन्द्र भगवान् के चरणों का, जो कि देवों द्वारा भी पूज्य हैं, खूब मन लगाकर ध्यान करते रहे और अन्त में जिन्होंने अपने पुण्यबल से सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की वे मुझे भी मंगल दें ॥२६-४१॥

७१. धन्य मुनि की कथा

सर्वोच्च धर्म का उपदेश करने वाले श्रीजिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर धन्य नाम के मुनि की कथा लिखी जाती है, जो पढ़ने या सुनने से सुख प्रदान करने वाली है ॥१॥

जम्बूद्वीप पूर्व की ओर बसे हुए विदेह क्षेत्र की प्रसिद्ध राजधानी वीतशोकपुर का राजा अशोक

जम्बूद्वीपक्षेत्रविख्याते पूते पूर्वविदेहके। वीतशोकपुरे राजा संजातशोकनामभाक् ॥२॥
 धान्यगाहनवेलायां स राजा भूरिलोभतः। बन्धनं कारयत्येव बलीवर्दमुखेषु च ॥३॥
 तथा महानसे पाकं कुर्वतीनां च योषिताम्। कारयित्वा स्तनेषूच्चैर्बन्धनं कर्मबन्धनम् ॥४॥
 तद्दालानां स्तनं पातुं न ददात्येव मूढधीः। अहो लोभेन मूढात्मा किं करोति न पातकम् ॥५॥
 एकदा तस्य भूभर्तुर्मुखे शिरसि चाभवत्। महारोगस्ततस्तस्य विनाशार्थं महौषधम् ॥६॥
 पाचयित्वा समादाय भाजने भोजनाय च। यावत्संतिष्ठते राजाऽशोकस्तावच्छुभोदयात् ॥७॥
 महारोगग्रहग्रस्तो मुनीन्द्रो भुवनोत्तमः। चर्याकाले समायातः पवित्रीकृतभूतलः ॥८॥
 दृष्ट्वा तं सुतपोयुक्तं मुनिं परमनिस्पृहम्। यो मे रोगो मुनेरस्य स एव भवति ध्रुवम् ॥९॥
 इति ज्ञात्वा महाभक्त्या नवपुण्यैः समन्वितम्। तस्मै तदौषधं दिव्यं पथ्यं चापि ददौ नृपः ॥१०॥
 ततो द्वादशवर्षोत्थरोगस्तस्य महामुनेः। शीघ्रं नष्टो यथा मिथ्यादृष्टिः सददृष्टिवाक्यतः ॥११॥
 तत्पुण्येन नृपः सोपि क्षेत्रेऽत्र भरते शुभे। पुरे चामलकण्ठाख्ये निष्ठसेनो महीपतिः ॥१२॥
 नन्दिमत्यभिधा राज्ञी तयोः पुत्रोभवत्सुधीः। रूपलावण्यसत्पुण्यमण्डितो धन्यनामकः ॥१३॥
 एकदा स्वगुणैः सार्द्धं वृद्धिं प्राप्य स धन्यकः। अरिष्टनेमितीर्थस्य पादमूले जगद्धिते ॥१४॥

बड़ा ही लोभी राजा हो चुका है। जब फसल काटकर खेतों पर खले किए जाते थे तब वह बेचारे बैलों का मुँह बँधवा दिया करता और रसोई घर में रसोई बनाने वाली स्त्रियों के स्तन बँधवा कर उनके बच्चे को दूध न पीने देता था, सच है, लोभी मनुष्य कौन सा पाप नहीं करते? ॥२-५॥

एक दिन अशोक के मुँह में कोई ऐसी बीमारी हो गई जिससे उसका असर उसके सिर में आ गया। सिर में हजारों फोड़े-फुंसी हो गए। उससे उसे बड़ा कष्ट होने लगा। उसने उस रोग की औषधि बनवाई वह उसे पीने को ही था कि इतने में अपने चरणों से पृथ्वी को पवित्र करते हुए मुनि आहार के लिए इसी ओर आ निकले। भाग्य से यह मुनि भी राजा की तरह इसी माह रोग से पीड़ित हो रहे थे। इन तपस्वी मुनि की यह कष्टमय दशा देखकर राजा ने सोचा कि जिस रोग से मैं कष्ट पा रहा हूँ, जान पड़ता है उसी रोग से ये तपोनिधि भी दुःखी है। यह सोचकर या दया से प्रेरित होकर राजा जिस दवा को स्वयं पीने वाला था, उसे उसने मुनिराज को पिला दिया और वैसा ही उन्हें पथ्य भी दिया। दवा ने बहुत लाभ किया। बारह वर्ष का यह मुनि का महारोग थोड़े ही समय में मिट गया, मुनि भले चंगे हो गए ॥६-११॥

अशोक जब मरा तो इस पुण्य के फल से वह अमलकण्ठपुर के राजा निष्ठसेन की रानी नन्दमती के धन्य नाम का सुन्दर गुणवान् पुत्र हुआ। धन्य को एक दिन श्रीनेमिनाथ भगवान् के पास धर्म का उपदेश सुनने को मौका मिला। वह भगवान् के द्वारा अपनी उम्र बहुत थोड़ी जानकर उसी समय सब माया-ममता छोड़ मुनि बन गया। एक दिन वह शहर में आहार के लिए गया, पर पूर्वजन्म के पाप कर्म के उदय से उसे आहार नहीं मिला। वह वैसे ही तपोवन में लौट आया। यहाँ

धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम्। ज्ञात्वा स्वल्पतरं स्वायुर्मुनिर्जातो विचक्षणः ॥१५॥
 पूर्वकर्मोदयाद्भिक्षामप्राप्तो धीरमानसः। उग्रोऽग्रं सुतपः कुर्वन्निहरंश्च महीतले ॥१६॥
 सौरीपुरीं समागत्य यमुनापूर्वसत्तटे। आतापनाख्ययोगेन संस्थितो मुनिनायकः ॥१७॥
 तदा पापवर्द्धिकां गत्वा यमुनाचक्रं भूभुजा। पुनर्व्याघुटितेनैव पापिनाशकुनास्थया ॥१८॥
 स्वबाणैः पूरितः साधु-स्तदासौ धन्यनामभाक्। शुक्लध्यानप्रभावेन सिद्धिं प्राप्नोति निरंजनः ॥१९॥
 अहो धीरत्वमत्युच्चैः सतां केनात्र वर्ण्यते। येनो घोरोपसर्गेऽपि शीघ्रं मुक्तिः समाप्यते ॥२०॥
 धन्यो धन्यमुनीश्वरो भयहरो भव्यात्मनां तारको देवेन्द्रादिसमर्चितो हितकरः श्रीमुक्तिकान्तावरः।
 आधिव्याधिसमस्तदोषनिकरं हत्वा सुखं शाश्वतं कुर्यान्मे वरबोधसिन्धुरतुलश्चारित्रचूडामणिः ॥२१॥

इति कथाकोशे धन्यमुनेराख्यानं समाप्तम्।

७२. पञ्चशतमुनीनामाख्यानम्।

पादपद्मद्वयं नत्वा जिनेन्द्रस्य शुभश्रिये। मुनिपञ्चशतानां तु चरित्रं श्रेयसे ब्रूवे ॥१॥
 दक्षिणाख्यपथे ख्याते देशे च भरताभिधे। कुम्भकारकटे पूर्वं पत्तने सुचिरंतने ॥२॥
 राजाभूद्वण्डको राज्ञी सुव्रता रूपमण्डिता। बालकाख्योभवन्मन्त्री पापी धर्मपराङ्मुखः ॥३॥

से विहार कर वह तपस्या करता तथा धर्मोपदेश देता हुआ शौरीपुर आकर यमुना के किनारे आतापन योग द्वारा ध्यान करने लगा। इसी ओर यहाँ का राजा शिकार के लिए आया हुआ था, पर आज उसे शिकार न मिला। वह वापस अपने महल की ओर आ रहा था कि इसी समय इसकी नजर मुनि पर पड़ी। इसने समझ लिया कि बस, शिकार न मिलने का कारण इस नंगे का दीख पड़ना है, उसने यह अपशकुन किया है। यह धारणा कर इस पापी राजा ने मुनि को बाणों से खूब वेध दिया। मुनि ने तब शुक्लध्यान की शक्ति से कर्मों का नाश कर सिद्ध गति प्राप्त की। सच है, महापुरुषों की धीरता बड़ी ही चकित करने वाली होती है। जिससे महान् कष्ट के समय में भी मोक्ष प्राप्ति हो जाता है ॥१२-२०॥

वे धन्य मुनि रोग, शोक, चिन्ता आदि दोषों को नष्ट कर मुझे शाश्वत, कभी नाश न होने वाला सुख दें, जो भव्यजनों का भय मिटाने वाले हैं, संसार समुद्र से पार करने वाले हैं, देवों द्वारा पूजा किए जाते हैं, मोक्ष-महिला के स्वामी हैं, ज्ञान का समुद्र हैं और चारित्र-चूडामणि हैं ॥२१॥

७२. पाँच सौ मुनियों की कथा

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों को नमस्कार कर पाँच सौ मुनियों पर एक साथ बीतने वाली घटना का हाल लिखा जाता है, जो कि कल्याण का कारण है ॥१॥

भरत के दक्षिण की ओर बसे हुए कुम्भकारकट नाम के पुराने शहर के राजा का नाम दण्डक और उनकी रानी का नाम सुव्रता था। सुव्रता रूपवती और विदुषी थी। राजमन्त्री का नाम बालक था। यह पापी जैनधर्म से बड़ा द्वेष रखा करता था। एक दिन इस शहर में पाँच सौ मुनियों का संघ